इकाई 4 सामाजिक समस्याओं को समझने का गाँधीवादी दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

लक्ष्य और उद्देष्य

4.2 गाँधीवादी दृष्टिकोण के लक्षण

4.3 एक सामाजिक वैज्ञानिक और सामाजिक आविष्कारक के रूप में गाँधी

4.4 सामाजिक समस्याएँ

4.4.1 निर्धनता और बेरोज़गारी

4.4.2 व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों के बीच हिंसा

4.4.3 सामाजिक समूहों में फूट और मनमुटाव

4.4.4 षिक्षा

4.4.5 स्वच्छता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और पोषण

4.5 समस्याएँ और मुद्दे

4.5.1 धर्म

4.5.2 ईष्वर और सत्य

4.5.3 साध्य और साधन

4.5.4 अहिंसा

4.6 गाँधीवादी संरचना का क्रमबद्ध विश्लेषण

4.7 सारांष

4.8 बोध प्रष्न

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

गाँधी का मानवीय जीवन के एकत्व में विष्वास थाः उसके अनुसार समूचा जीवन एक सांश्लेषिक होता है। जीवन को अलग–अलग टुकड़ों अर्थात् धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक–वैयक्तिक और सामूहिक पहलुओं में विभाजित कर नहीं समझा जा सकता; विभिन्न प्रकार के अलग–अलग दिखाई देने वाले समूचे पहलू मनुष्य के जीवन के अंष होते हैं; प्रत्येक ऐसा पहलू दूसरे पहलू को प्रभावित करता है तथा उससे प्रभावित होता है। वस्तुतः ऐसी कोई अमुक समस्या नहीं होती जो मात्र एवं शुद्ध रूप से नैतिक, आर्थिक, सामाजिक वैयक्तिक अथवा सामूहिक रूप की अलग सी हो। मनुष्य के जीवन ऐसे सभी पहलू एक–दूसरे के साथ अलंघनीय रूप से गुथे होते हैं।

मानवीय जीवन का विभिन्न भागों/अंषों में बाँटे जाने का मुख्य उद्देष्य मानवीय जीवन का सही ढंग से अध्ययन और विश्लेषण करना होता है। वास्तविक जीवन में व्यक्ति का कृत्रिम जीवन (उसका भिन्न भागों में बाँटा जाना) उसके जीवन को समझने के लिए होता है। वस्तुतः व्यक्ति के अलग–थलग जीवन का कोई अस्तित्व ही नहीं होता। अलग–थलग जीवन का अध्ययन आंषिक और एकतरफा होता है। ऐसा जीवन समुचित जीवन की सच्चाइयों से बहुत दूर होता है। यदि ऐसे अलग–थलग जीवन पर

विष्वास कर उसके अस्तित्व का अध्ययन किया जाए तो हमें मानवीय जीवन के विखंडित व्यक्तित्व तथा सामाजिक जीवन के सामूहिक जीवन में ऐसे व्यक्तियों के फलस्वरूप असंतुलित व्यवस्था दिखाई पड़ेगी। मात्र विश्लेषण एवं अध्ययन मानवीय जीवन का अंत–मात्र नहीं होता। जीवन, भले वैयक्तिक हो अथवा सामूहिक, तो जिये जाने का नाम है और सही रूप एवं सुयोग्य रूप से जीने का नाम है। सभी प्रकार के विचारक, ऋषि–मुनी, सुधारक समूचे जीवन के अस्तित्व की चर्चा करते हैं।

यदि व्यवहारिक जीवन को कृत्रिम रंग से विभाजित नहीं किया जा सकता अथवा विभाजित करके सही रूप से नहीं समझा जा सकता और यदि इसे सुयोग्य रूप से जिया जाना चाहिए, तो इस जीवन का किसी समूची योजना और आयोजन रूप से नियंत्रित किया जाना ज़रूरी है। जीवन को कुछेक मूल सिद्धान्तों/मूल्यों के अनुरूप निर्देषित किया जाना चाहिए। इन नियमों, मूल्यों और सिद्धान्तों के बिना जीवन का न तो कोई उद्देष्य होगा और न ही कोई दिषा–निर्देष। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मानवीय आचरण सदैव सामाजिक आचरण होता है। यदि यह दिषाहीन और निर्देषनविहीन होता है तो फिर उसपर किसी भविष्य की योजना नहीं बनायी जा सकती। ऐसी परिस्थितियों में सब ओर अनिष्चितता ही दिखाई देती है। यदि जीवन किसी समूचे/समस्त रूप के तत्व का नाम है जिसे कुछ नियम और मूल्य निर्देषित करते हैं, तो ऐसे जीवन का एकीकरण और एकत्व किया जाना ज़रूरी है। जीवन का एक एकीकृत एवं सुसंगत रूप होना ज़रूरी होता है। इस कारण उसके निर्देषित नियम भी एक व्यवस्थित प्रयोजन का संग्रह होने चाहिए।

गाँधी का अपना स्वयं का जीवन ऐसे ही सिद्धान्तों और मूल्यों के अनुरूप गुजरा था और इस कारण हम उनके जीवन को एक संगठित समन्वित जीवन कह सकते हैं। वस्तुतः गाँधी का जीवन एक सुसंगत सम्पूर्णता थी। उनकी षिक्षाएँ और योजनाएँ में भी हमें एकत्वता और सुव्यवस्थिता के तत्व दिखाई देते हैं। उनके जीवन का एक मूल उद्देष्य थाः सम्पूर्णता का विचार। गाँधी के अनुयायियों और उनके विद्यार्थियों को उनके विचारों, लेखों, भाषणों में ऐसा एकत्व स्पष्टतया दिखाई नहीं देता था। उनकी धारणाओं का एकत्व था, परंतु उन्हें किसी व्यवस्था में समेटा नहीं गया। स्वयं गाँधी ने अपने विचारों को कोई क्रम रूप देने का कभी भी प्रयास नहीं किया था। अनेक पहले के सुधारकों की भाँति वह किसी अमुक स्थिति तथा उसके उभरने वाली समस्याओं के समाधान तलाष करने तक ही संतुष्ट रहता था तथा अपने सिद्धान्तों और मूल्यों के दायरे में स्थिति अनुसार समस्याओं को (जैसे उसके समक्ष आती थीं), हल करता रहता था। अन्य सुधारों की भाँति उन्होंने उन समाधानों को एक व्यवस्था और रूप देने का काम दूसरों पर छोड़ रखा था। संसार, देष आदि के समक्ष की समस्याओं के लिए तलाषे गए समाधान व्यावहारिकता अनुरूप होते थे जिनपर तत्कालीन परिस्थितियों और समय का रंग अवष्य पड़ा होगा।

लक्ष्य और उद्देष्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- सामाजिक समस्याओं की ओर गाँधी का क्या दृष्टिकोण था इसके बारे समझ सकेंगे;
- एक सामाजिक वैज्ञानिक के रूप में गाँधी के मुख्य वाद–विषय क्या थे; इनके बारे में जान सकेंगे; और
- सामाजिक समस्याओं की ओर गाँधीवादी दृष्टिकोण को समझने के लिए एक शोधकर्ता को किन–किन समस्याओं तथा वाद–विषयों का सामना करना पड़ता है इसकी समीक्षा कर सकेंगे।

4.2 गाँधीवादी दृष्टिकोण के लक्षण

किसी भी विषय पर गाँधी के विचार सही रूप से समझने के लिए कुछ बातों को ध्यान में रखना ज़रूरी है। पहली, पारम्परिक रूप से शब्द की दृष्टि में गाँधी स्वयं एक सामाजिक वैज्ञानिक नहीं थे। जे.बी. कृपलानी ने ठीक कहा थाः "यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो बिना किसी रूपरेखा के बनाने वाला कोई योजनाकर्ता होता है, तो हम गाँधी को ऐसा आयोजक कह सकते हैं।" अन्य अनेक सामाजिक वैज्ञानिकों के विपरीत, उसने अकादमीय ढंग से अध्ययन कभी नहीं किया था। वस्तुतः अकादमीय ढंग से अध्ययन करना तथा तथ्यों को समझना गाँधी के स्वरूप का हिस्सा कभी था ही नहीं। उन्होंने कभी भी किसी शास्त्र को अकादमीय रूप से बनाने का प्रयास भी नहीं किया था। उन्होंने अपने विचारों को एक जगह एकत्रित कर क्रमिक रूप से प्रस्तुत भी नहीं किया था। उनके विचारों को उनके विभिन्न लेखों, साक्षात्कारों, भाषणों तथा पूछे गए प्रष्नों आदि को एकत्रित कर तथा समझने के पष्चात् ही बीनना पड़ता है। वास्तव में, वह सिद्धान्तकार था ही नहीं, वह तो एक कार्यकर्ता था, एक कर्मयोगी। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया थाः "मैं अकादमीय प्रकार की रचनाओं के लिए बना ही नहीं हूँ। कार्य करना ही मेरा धर्म है। मैं अपनी सोच के अनुसार जिसे अपना कर्त्तव्य समझता हूँ करता हूँ तथा जो मेरे मार्ग में परिस्थितियों के अनुरूप आता है, करता हूँ।" उन्होंने अपने अध्ययन को कभी भी सिद्धान्तों का रूप दिया ही नहीं। उनका अध्ययन उनके अनुभव से विकसित होता है – देष के स्वतंत्रता संग्राम के मार्ग में आने वाली समस्याओं के समाधान की प्रक्रिया में जो अनुभव प्राप्त होता रहा, गाँधी के विचार उस रूप में निर्मित होते चले गए। वस्तुतः परिस्थितियों ने जो कुछ गाँधी को सिखाया, वे उनसे सीखते चले गए। सामाजिक त्रुटियों से उभरने वाले समाधान किन्हीं जटिल सैद्धान्तिक उपागमों से न उभरकर स्वयं उन त्रुटियों के हल के रूप में उभरे हैं। गाँधी के समाधान उनकी ज़रूरतों की गहराइयों से मिलते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी द्वारा समस्याओं के हल करने के तरीके (यदि टाइनबी के विचारों में देखा जाए), अनिवार्य रूप से, उन चुनौतियों से उभरे हैं जो भारतीय इतिहास में तत्कालीन निर्धनता के उन्मूलन से निकले हैं। गाँधी जैसे व्यक्ति के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि उनके समाधान उनके समय की सामाजिक समस्याओं/मुद्दों से बने तथा निखरे हैं।

जैसे ही गाँधी के मस्तिष्क में कोई विचार आता था, वह उसको व्यावहारिक रूप देने का प्रयास करते थे तथा दूसरों को भी ऐसा करने की सलाह देते थे। अतः स्पष्ट था कि वह अपने विचारों और योजनाओं को समझाते थे। परंतु उनकी व्याख्याएँ न केवल संक्षिप्त होती थीं, अपितु ऐसी होती थी जो समझाने वाले व्यक्ति, स्थान और परिस्थितियों के अनुरूप हों। गाँधी द्वारा दिए गए निर्देष व्यावहारिक होते थे। सामान्यतया दी गई व्याख्याएँ तथा षिक्षाएँ पत्र–व्यवहारों, समाचारपत्रों, समितियों में हुए विचार–विमर्ष, भाषणों द्वारा सुझाई जाती थीं। गाँधी ने कुछेक रचनाओं की तो रचना भी की थी परंतु वह भी कुछेक विशेष समस्याओं से सम्बन्धित थीं। वह इस दृष्टि से नहीं लिखी गईं कि वह अपने विचारों और सिद्धान्तों को विवेक तथा तर्क के अनुरूप व्याख्या करना चाहते थे। उन रचनाओं में वे किन्हीं सिद्धान्तकारों और लेखकों का उल्लेख भी नहीं करते थे। अपने विचारों को लोकप्रिय/लौकिक बनाने के लिए तथा उन्हें अपने विचारों तक लाने के लिए गाँधी एक परिस्थिति सुधारक की भाँति षिक्षाओं पर निर्भर रहने की बजाय परिस्थितियों और उदाहरणों पर अधिक भरोसा करते थे। परिणाम यह होता है कि उनके सिद्धान्त में काफी रिक्तताएँ पाई जाती थीं जिन्हें भरने की ज़रूरत पड़ती थी तथा उनमें अनेकों अंतर्विरोध भी होते थे जिन्हें समुचे रूप से उनके विचारों द्वारा दूर करना पड़ता था।

दूसरे, अपने प्रस्तुतीकरण और अभिव्यक्ति से दूर, गाँधी के विचारों में नयापन और मौलिकता हुआ करती थी। वह विचार सृजनात्मक मस्तिष्क से ऐसे व्यक्ति से उभरते थे जो सामाजिक परिस्थितियों को सुधारने का जोष रखते थे तथा अपने समय की कठिनाइयों को एक चुनौती के रूप में स्वीकार

भी करते थे। गाँधी के लिए ऐतिहासिक उदाहरण और घटनाएँ नवीन सोच और खोज़ के मार्ग में कोई बाधाएँ नहीं होती थीं। गाँधी ने अपने विचारों और ज्ञान को ग्रंथों से ग्रहण नहीं किया था। उन्होंने अपना समय पुस्तकालयों और संग्रहालयों में बड़ी–बड़ी और पुरानी पुस्तकों को पढ़ने में नष्ट नहीं किया था। उनका बहुत सा ज्ञान उन्हीं लोगों के साथ सीधे सम्पर्क बनाए रखने का परिणाम था तथा इस तथ्य से सम्बन्धित था कि उसे कैसा अनुभव प्राप्त हुआ है। उन्होंने अपने विचारों को जनता के समक्ष किसी विद्वान की भाषा में न रखकर अपितु ऐसे व्यक्ति के रूप में रखा जो साधारण व्यक्ति के रूप में साधारण, स्त्री और पुरुष, से बात कर रहा हो। उन्हें अपनी बात समझाने के लिए कभी भी दार्शनिक और तकनीकी का प्रयोग का प्रयोग नहीं किया था। वस्तुतः वह जनता से जुड़े व्यक्ति थे और उनकी ही सरल भाषा में ही उनसे बात करते थे जो उन्हें समझ आती थी। जब वह जनसाधारण से बात करते थे तो इस दृष्टि से नहीं कि उन्होंने क्या–क्या अध्ययन किया है अपितु इस रूप में कि उन्होंने क्या क्या देखा है, क्या–क्या महसूस किया है तथा क्या–क्या अनुभव किया है। वे तो अपने अनुभव और अपने प्रेक्षण जो प्रत्यक्ष रूप से देखा था दूसरों के साथ बाँटा करते थे तथा वे उन प्रेक्षणों और अनुभवों की जनसाधारण की प्रतिक्रियाएँ देखा करते थे। याद रहे,बड़े–बड़े धार्मिक सुधारकों और प्रवक्ताओं ने भी इसी तरीके को अपनाया था। उनका ऐसा तरीका किसी विद्वान के विपरीत साधारण व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता के अनुरूप होता था जो जनसाधारण व्यक्ति की समझ में भी आता था, उसे अपील भी करता था तथा उनमें विष्वसनीयता की मात्रा भी विद्यमान होती थी।

तीसरा, गाँधी की प्रवृत्ति बौद्धिक की अपेक्षा आध्यात्मिक अधिक थी। उनका पूरा जीवन आध्यात्मिक और नैतिक साँचे में बना था जिसमें सत्य और अहिंसा मौलिक सिद्धान्त माने जाते थे। उनके पूरे दृष्टिकोण अर्थात सोच को उनके नैतिक और आध्यात्मिक नियमों और आदर्षों की दृष्टि से समझा जा सकता हो। गाँधी ने कभी भी नीतिषास्त्र, अर्थषास्त्र तथा समाजषास्त्र आदि को किसी दर्षनषास्त्र को ऐसे रूप में नहीं समझा जो नीतिषास्त्र, अर्थषास्त्र तथा समाजषास्त्र आदि से अलग–थलग, स्वायत्त–स्वतंत्र तथा कोई बौद्धिक व्यवस्था होती है। वह जीवन को एक समग्रता के रूप में लेते थे। उनके लिए जीवन पूरा चित्र होता है, उनका कोई अंष जीवन का संपूर्ण चित्र नहीं बनता। उनके लिए अर्थषास्त्र तथा नीतिषास्त्र में, नीतिषास्त्र तथा राजनीतिषास्त्र में, राजनीतिषास्त्र तथा अर्थषास्त्र आदि में रेखा नहीं खींची जा सकती। उनकी इस प्रकार की सोच पर पड़ी भारतीय दार्षनिक परम्परा की छाप नजर आती है। हमें याद रखना चाहिए कि भारतीय दार्षनिकों द्वारा उनके दर्षन में हमें सभी प्रकार तात्विक, नैतिक, तार्किक आदि के उपागमों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति को भारतीय दर्षन का संष्लेषणात्मक प्रवृत्ति कहा जाता है।

अन्त में गाँधी हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व का अंष बन गए। हम उनके नाम, सफलताओं और स्मृतियों को, भावनात्मक रूप से अनुवाचित करने लगे हैं। इसका कारण यह कहा जा सकता है कि वह हमारे निकटतम हैं, समय की दृष्टि से भी, तथा सोच–विचार की दृष्टि से भी। निःसंदेह बहुत अधिक निकटता हमारी ओर की जाने वाली वस्तुपरक प्रषंसा के मार्ग में बाधा बन सकती है और हम गाँधी की ओर अपनी बौद्धिक विश्लेषणात्मक पद्धति को अपनाने में संकोच करने लगते हैं। भावनाएँ बुद्धिमता का संकेत नहीं होतीं। अनावष्यक प्रकार का उत्साह समझ का संकेत नहीं होता। अपने विशेष क्षेत्र में भावनाओं की उपयोगिता होती अथवा हो सकती है, परंतु जब हम हमारी बुद्धि और सोच पर नियंत्रण करने लगते हैं तो हम अपनी दृष्टि/सोच खो बैठते हैं तथा एक झूठी प्रकार की भ्रांति का षिकार हो जाते हैं। हम अपने संभ्रमों के दलदल में बुरी तरह से फंस जाते हैं। अनियंत्रित प्रकार की बुद्धि से अलग होकर भावनाएँ समस्याओं में परिवर्तित हो जाती हैं जो केवल अंधी भक्ति, मातांधता और धर्मान्धता आदि का प्रतीक होती हैं। परिज्ञान के लिए मात्र भक्ति कोई निष्चित रूप का मार्गदर्षन नहीं होती। दूसरी ओर, गाँधी तथा उनके दर्षन का तिरस्कार तथा अवहेलना भी होगी जो अपने आपमें अपेक्षाकृत

अधिक भावनात्मक है। कारण वहीं हैः बुद्धि को निर्णय करने का मानदण्ड होना चाहिए, भावनाओं को नहीं। दोनों प्रकार के दृष्टिकोण (भावनात्मक आधार पर गाँधी की प्रषंसा करना और तर्क और विवेक की कसौटी पर ही गाँधी का मात्र मूल्यांकन करना) एक–तरफा हैं, क्योंकि दोनों प्रकार के दृष्टिकोण कहीं न कहीं भावनाओं से जुड़े हैं। हमें याद रखना चाहिए कि निर्णय पर पहुँचने के लिए विश्लेषण की आवष्यकता सदैव होती हैं – एक बौद्धिक प्रकार के दृष्टिकोण के बिना हम किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकते। गाँधी तथा उनके द्वारा अपनाई गई अध्ययन–प्रविधियों के लिए मात्र बौद्धिक दृष्टिकोण भी संदेहात्मक प्रयास होगा। परंतु इस प्रकार की पद्धति से परे हटकर गाँधी और उनके दर्षन को समझना भी क्षमायोग्य नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार का कार्य कठिन अवष्य है, परंतु इसके बदले में मिलने वाली उपलब्धि प्रतिफलित भी होती है।

4.3 एक सामाजिक वैज्ञानिक और सामाजिक आविष्कारक के रूप में गाँधी

गाँधी इस दृष्टि से एक सामाजिक वैज्ञानिक थे कि वह सामाजिक सत्य को सर्वेक्षण, अंतःज्ञार्नित और बौद्धिक परिकल्पनाओं और अनुभवजन्य प्रमाण जैसे वैज्ञानिक पद्धतियों से खोज़ करते थे। एक बार उन्होंने रिचर्ड ग्रैग को बताया था कि उनकी नज़र में पाष्चात्य वैज्ञानिक कुछ अधिक विष्वसनीय इस रूप में नहीं होते थे कि वह अपनी परिकल्पनाओं को अधिकांषतः अपने ऊपर प्रमाणित करते थे। वह स्वयं भी सर्वप्रथम अपनी परिकल्पनाओं को अपने पर प्रमाणित करते थे तथा बाद में वह दूसरों को प्रमाणित करने के लिए कहा करते थे (राधाकृष्णन, 1939, पृ.72–73)। भले ही, उनकी परिकल्पना खाद्य सामग्री, साफ–सफाई, कातने वाले चक्र, जाति प्रथा अथवा सत्याग्रह से क्यों न सम्बन्धित हों। अपनी आत्मकथा का शीर्षक भी उन्होंने *सत्य की खोज़ में मेरा अनुभव* चयनित किया था।

अपनी समस्याओं, समाधान के तरीकों, उनकी खोज़ प्रक्रिया की दृढ़ता और निष्चितता, मानवीय सोच के प्रति उनका सर्वव्यापक ज्ञान आदि का चयन गाँधी को एक सामाजिक वैज्ञानिक बनाता है। एक सामाजिक आविष्कारिक के रूप में गाँधी की महानता इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने अपने अपनाए गए तरीकों को लोगों की सोच, भावनाओं, तौर–तरीकों तथा संस्कृतियों, भौतिक एवं प्रौद्योगिकी संसाधनों आदि के साथ जोड़कर मेल बिठाने का कार्य किया। उनकी महानता इस तथ्य में भी निहित है कि वह भली प्रकार से भेद कर पाते थे कि उपलब्ध सामग्री आँकड़ों में क्या–क्या छोड़ा जाए तथा क्या–क्या बनाए रखा जाए। उनकी महानता सामाजिक सुधारों को कार्यरूप देने की तीव्रता में दिखाई देती है। वह जानते थे कि प्रत्येक समाज में उस समाज में परिवर्तन लाने की क्षमता के तत्व उसी काल में समय में विशेष रूप में विद्यमान होते हैं। वह यह भी मानते थे कि कई बार परिस्थितियाँ भी अनेकों नई प्रवृत्तियों को जन्म दे सकती हैं जब कि अनेकों अन्य परिवर्तन अपना दीर्घ समय लगाते हैं। पुरानी आदतें और रीति रिवाज जाते–जाते भी समय लेती हैं तथा नई प्रवृत्तियाँ आते–आते भी समय लेती हैं। उनकी सामाजिक खोज़ की अद्वितीयता इस तथ्य में भी निहित रहती थी कि किसी भी सामाजिक सुधार को सुझावित करने से पूर्व वह उसे प्राप्त करने हेतु प्रभावी संगठन भी पहले ही तैयार कर लेते थे। वास्तव में गाँधी अपनी प्रषासकीय और संगठनात्मक सोच क्रियाओं की विस्तारिता को उनकी गहराइयों तक विचार–विमर्ष करने में निपुण थे।

4.4 सामाजिक समस्याएँ

अनेक प्रकार की जटिल और व्यापक सामाजिक समस्या में जिनपर गाँधी ने काम किया था, वह थीं: (1) निर्धनता तथा बेरोज़गारी; (2) व्यक्तियों, समूहों तथा राष्ट्रों के बीच हिंसा; (3) सामाजिक समूहों में फूट और मनमुटाव; (4) षिक्षा, और (5) स्वच्छता (साफ–सफाई); सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा पोषण।

4.4.1 निर्धनता और बेरोज़गारी

गाँधी द्वारा निर्धनता तथा बेरोज़गारी की समस्याओं का समाधान हथकरघा व्यवसायों जैसे सूत–ऊन कातना और बुनना आदि को पुनः अपनाए जाने और ऐसे व्यवसायों को पुनः विकसित करने से सम्बन्धित था। पष्चिमी देशों में ऐसे तरीकों और व्यवसायों की अनदेखी की जाती थी और स्वयं भारत में षिक्षित भारतीय भी ऐसे हथकरघा व्यवसायों की औचित्यता को स्वीकार नहीं करते थे।

भारत जैसे देष में जहाँ वर्षा ऋतु बहुत कम समय तथा ग्रीष्म और शुष्क ऋतुएँ लम्बे समय की होती हैं जबकि भारत में एक वर्ष में लगभग तीन से छः महीनों का ऐसा समय भी आता है जबकि किसान/कृषक बिल्कुल कुछ नहीं कर पाते तथा बेकार से होते हैं। ग्रीष्म और तेज़ गर्मी के कारण किसान और कृषक न तो जमीन जोत पाते हैं और न ही फसल काट पाते हैं। देष की पूरी जनसंख्या के संदर्भ में किसानों की इतनी बड़ी संख्या बेरोज़गारी की स्थिति में रहती है। इन दिनों आर्थिक हानि अत्यधिक होती है जिससे उत्पन्न मनोवैज्ञानिक और नैतिक अवसाद और विकृति विस्मयकारी होती है। पष्चिम से आरंभ हुए मषीनी युग से पूर्व भारत में किसान/कृषक ऐसे खाली समय में हथकरघा वस्तुएँ बनाने में व्यस्त रहते थे। भारत में उनका उत्पादन तो हर प्रांत में होता है तथा हाथ से बनाए जाने वाले औज़ार भी किसान की पहुँच से बाहर नहीं होते थे। फलस्वरूप हाथों से बनाई गई परम्पराएँ भारत में लुप्त नहीं हुई थीं। हथकरघा से बना कपड़ा मषीन से बने कपड़े से बाज़ारू कीमत में अधिक नहीं होता था और उनके लिए जो स्वयं कपड़ा कातते–बुनते थे, उनके लिए तो उसकी लागत और भी कम होती थी। अधिकांष जनता के लिए तो कपड़े की कीमत आजीविका के कुल खर्च का एक पाँचवाँ अथवा एक छठा भाग हुआ करती थी। उनके लिए जो अपना गुज़ारा बड़ी कठिनाई से किया करते थे आजीविका के कुल खर्च का एक–दसवाँ भाग बचा पाना काफी होता था। इस प्रकार के हथकरघा से वस्तुएँ आर्थिक दृष्टि से न केवल अपेक्षाकृत उपयोगी होती थीं, परंतु इनका व्यक्ति के जीवन के आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता, पहल और आषा–आस्था बनाए रखने का माध्यम होते थे जो दीर्घ रूप की निर्धनता तथा बेरोज़गारी से होने वाली हानि से एक रक्षा कवच थीं। आधुनिक मनोचिकित्सकों ने स्वयं हथकरघा के इस रोग को हरने वाली शक्ति को लोहा माना है तथा उसकी बेरोज़गारी समाप्त करने की क्षमता का सराहा है। अतः यह सोच कि हथकरघा उद्योग भारतीय बेरोज़गारी के रोग के उपचार का एक सुझाव हो सकता है, इतना बचकाना नहीं है जितना कि यह जान पड़ता है। फिर भी कुछ रेखी हरकतों की नज़र से देखते हुए हंस कर टाल देते थे कि ऐसा करना तो पिछड़ेपन का संकेत है, सुई की घड़ी को वापस ले जाने वाली बात है, श्रम विभाजन के उपयोगी नियम की अवहेलना है, मषीन और विज्ञान का तिरस्कार है।

वास्तव में एक षिल्पवैज्ञानिक व्यवस्था जनसाधारण के लाभ के लिए बनती है और यदि एक अमुक षिल्पवैज्ञानिक तंत्र जनसंख्या के किसी भाग को लाभ नहीं पहुँचाता, जनता के उस भाग के लिए यह कोई मूर्खता नहीं है कि वह भाग अपनी भौतिक आजीविका के लिए किसी दूसरे को न अपनाए। यदि कोई षिल्पवैज्ञानिक तंत्र की भौतिक ज़रूरतों को पूरा नहीं कर पाता, तो ऐसे लोगों के लिए अपने पुराने तौर तरीकों और उद्योग–धंधों की अनदेखी कर उन्हें छोड़ना किसी मूर्खता से कम नहीं है। वस्तुतः उन उद्योग–धंधों को पुनः नियंत्रण में लेना उनके बस में होता है। यह आर्थिक दृष्टि से घड़ी को रोकना नहीं होता, अपितु उनको अपनाना और अपनी भौतिक ज़रूरतों को पूरा करना यानिक कि घड़ी को पुनः आरंभ करना हाता है।

आधुनिक उद्योगवाद ने रोज़गार के सामाजिक कार्य को हथकरघा स्तर से भी पहले वाले चरण पर ला खड़ा किया है। हमारी नैतिक एकता की व्यावहारिक सुई कुछ अधिक पीछे नहीं हुई है। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि मानवीय समाज एक ऐसे विष्वास पर टिका हुआ है कि लोग अपने कार्य को करने

के लिए अपने अनुरूप विशेष प्रकार के तरीकों–औज़ारों को स्वयं चयन करते है, और थौपे गए तरीकों और औज़ारों को आसानी से नहीं अपनाते हैं।

हस्तकौषल को पुनः अपनाना श्रम विभाजन का किसी भी दृष्टि से तिरस्कार नहीं है। बहुत सीमा तक, स्वचालन और अर्ध–स्वचालन मषीनरी ने इस नियम को पुराना कर दिया है। एक अन्य दृष्टि से इस नियम का तीव्र संचालन दो मुख्य कारकों के फलस्वरूप अप्रभावी सिद्ध हुआ हैः बड़े–बड़े बाजारों का संकुचन हुआ है तथा पहले के परस्पर सहयोग, आत्मनिर्भरता, एवं श्रम, प्रबंधन तथा पूँजी में सामंजस्य आदि में कमी आई है। श्रम विभाजन के गुणों की अपनी ही सीमाएँ हैं और हाल के समय में इन सीमाओं का संकुचन हुआ है।

गाँधी के सुझावों में मषीनों अथवा विज्ञान का तिरस्कार करना सम्मिलित नहीं था। इसका प्रयास तो मानव शक्ति के उस भंडार को जो बेरोज़गार था साधारण मषीनों के रूप में प्रयोग में लाना था। इस प्रकार की सरल और साधारण मषीनरी अर्थात् बेरोज़गार लोग सामाजिक और आर्थिक समस्याओं में वृद्धि न कर ऐसी पहले से बनी और पनपी समस्याओं की कठिनाइयों को कम करना था। सभी देषों में राज्य की निधि अपेक्षाकृत सैनिक उपकरणों और गतिविधियों पर खर्च करके लगाई जा रही है जिसका प्रभाव लोगों के जीवन स्तर में कम और उन्हें लोकसेवाओं अर्थात षिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि की सुविधाओं से वंचित होना पड़ रहा है। वास्तव में, अर्थव्यवस्था अपने पतन की ओर अग्रसर है। पष्चिमी समाज में सामाजिक अस्थिरता का निरंतर पतन हो रहा है। फलस्वरूप ऐसे पष्चिमी राज्यों में उन्माद, आत्महत्या और अपराधों में वृद्धि हो रही है। यदि एक और बड़ा युद्ध होता है तो मानव जाति को बड़े स्तर पर व्यवसायी इलाज कराने की ज़रूरत पड़ेगी। तब शायद खादी तथा हथकरघा प्रकार की वस्तुओं की उपयोगिता और बढ़ जाएगी और लोगों के आर्थिक रूप से तथा इलाज के रूप में यह सब अमूल्य बन जाएँगें।

4.4.2 व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों के बीच हिंसा

गाँधी व्यक्तियों, समूहों तथा राष्ट्रों के बीच होने वाली हिंसा से अच्छे खासे परिचित थे। उन्होंने हिंसा उन्मूलन के लिए अपने सभी प्रयास उस दिषा में लगा दिए। उनका विष्वास था कि हिंसा के बदले हिंसा एक अत्याचारी के स्तर पर मृत्यु को गले लगाना होता है जो केवल मौत एवं विनाष की शक्ति को पहचानता है। दूसरी ओर, अहिंसा के प्रतिरोध के तरीके जीवन की शक्ति को पुनः लौटाते हैं तथा यह संदेष देते हैं कि जीवन जिन्दा रहने का अषमनीय सार है। अपनी षिक्षाओं द्वारा, गाँधी ने भारत की आत्मा को उनकी दासता से आजाद कर उन्हें पुनः व्यक्तियों का रूप दे दिया, वह व्यक्ति जो सिर उठा कर जीते हैं, वह व्यक्ति जो आँखों में आस्थाओं और आषाओं की ज्योति आलोकित करते हैं, वह व्यक्ति जो राष्ट्र बनने के मार्ग में सदैव आगे बढ़ते रहने की कामना करते हैं, और वह व्यक्ति जो दमनकारियों के अमानवोचित्त तौर–तरीकों के समक्ष कभी नहीं झुकते।

4.4.3 सामाजिक समूहों में फूट और मनमुटाव

गाँधी, लोगों के बीच विभिन्न समूहों और वर्गों में परस्पर विभेदों को दूर करने के सभी प्रयास किया करते थे, विशेषतया हरिजन सुधार के संदर्भ में। किसी भी अन्य देष में ऐसे सुधारों को लाने के लिए इतने अधिक प्रयास और आन्दोलन हुए जितने भारत में। गाँधी के लिए हिन्दू–मुस्लिम एकता उतनी ही ज़रूरी है जितना कि अस्पृश्यता का उन्मूलन। वह कहा करते थे कि यदि यह समस्या संतोषजनक तरीके से नहीं सुलझाई गयी तो भारत में रक्त की नदियाँ बह सकती हैं अथवा भारत में तनाव हो सकते हैं। वह यह भी मानते थे कि हमारे स्वतंत्रता संग्राम के लिए हिन्दू–मुस्लिम अति आवष्यक हैं।

गाँधी का मुख्य उद्देष्य यह था कि सत्य के अंततः सार को जागृत किया जाना चाहिए तथा उसके लिए निम्न से निम्न व्यक्ति से स्नेह करना उतना ही ज़रूरी है जितना एक व्यक्ति स्वयं से करता है। वस्तुतः यह स्नेह बिना किसी नस्ल, राष्ट्रीयता, जाति, धर्म अथवा लिंग के भेदभाव के होना चाहिए – यह तथ्य गाँधी की सार्वजनिक उदारता का आधार था।

4.4.4 षिक्षा

लौकिक षिक्षा के क्षेत्र में, गाँधी ने षिक्षा की एक विशेष योजना, "नई तालीम" के प्रयोजन की चर्चा की थी। इस योजना के अंतर्गत षिक्षा व्यवस्था को जीवनमुखी बनाया गया था, न कि पाठ्यक्रममुखी। नई तालीम की परिभाषा ऐसी षिक्षा व्यवस्था के रूप में की गई जो जीवन के लिए, जीवन के माध्यम से तथा संपूर्ण जीवन के लिए होती है। नई तालीम को कुछ श्रेणियों में विभाजित किया गया था – पूर्व–मौलिक, मौलिक, उत्तर–मौलिक, विष्वविद्यालय तथा सामाजिक षिक्षा। पूर्व–मौलिक षिक्षा का सम्बन्ध नर्सरी तक की षिक्षा से, आयु की सात से पन्द्रह वर्ष तक की षिक्षा का सम्बन्ध मौलिक षिक्षा से जबकि उत्तर–मौलिक षिक्षा उच्च स्तर की षिक्षा से बताया गया था। सामाजिक षिक्षा, एक दृष्टि से, प्रौढ़ स्तर की षिक्षा से था। इन सभी स्तरों की षिक्षा विद्यार्थियों को किसी न किसी हस्तकौषल के माध्यम से प्राप्त होनी बतायी गई – सब प्रकार के ज्ञान को हस्तकला के किसी स्तर के साथ जोड़े जाने का प्रयोजन। आर्थिक क्षेत्र में ऐसी षिक्षा एक उच्च प्रकार के संकल्प का संकेत थी जिसमें एक विद्यार्थी न केवल कुछ कमाते हुए अपनी षिक्षा का भार स्वयं उठाता था, परंतु ऐसी षिक्षा, बिना राज्य की वित्तीय सहायता के, सब लोगों तक उपलब्ध कराए जाने की संभावनाएँ जुटा सकती उनके अनुसार अर्जन तथा षिक्षा साथ–साथ होनी चाहिए थी। इस प्रकार की षिक्षा तड़क–भड़क की षिक्षा से दूर तथा जीवन से जुड़ी षिक्षा प्रासंगिक षिक्षा है। यह षिक्षा "मस्तिष्क" तथा "हाथ" को एक–दूसरे से जोड़ती है तथा मानवीय जीवों के विकास को अपनी नजर में बनाए रखती हैं।

4.4.5 स्वच्छता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और पोषण

गाँधी की यह मान्यता थी कि बुद्धि और श्रम का एक–दूसरे से पृथक्करण ग्रामों की ओर एक अपराध रूपी गफ़ल्ल का परिणाम रही है। ग्रामों की गन्दगी का दबाने की बजाए इन क्षेत्रों में गंदगी के अम्बार दिखाई पड़ते हैं। अनेक ग्रामों की ओर जाने वाला मार्ग कोई ताज़गी भर अनुभव नहीं देता। प्रायः ग्रामों की ओर जाने के लिए हम अपनी आँखें और नाक बंद करने का यत्न करते हैं ताकि हम गंदगी देख न सकें तथा बदबू सूंघ न सकें – दुर्गन्ध का नज़ारा और उसकी गंध इतनी अधिक भयानक होती है। लोगों को ग्रामों को स्वच्छता का प्रतिमान बनाना चाहिए। गाँधी की सोच यह थी कि निर्धनता के उन्मूलन के फलस्वरूप ही सफाई और सार्वजनिक स्वास्थ्य के विषय में कुछ सोचा जा सकता है। गाँधी ने स्वयं अपने आश्रमों में सफाई से जुड़े अनेक अभियान चलाए थे जिनमें जनसंख्या के अधिकांष भाग से जुड़े किसान–मजूदर और सार्वजनिक स्वास्थ्य बनाए रखने के कार्य स्वयं किया करते थे।

4.5 समस्याएँ और मुद्दे

अनेक प्रारंभिक एवं द्वित्तीय आँकड़े यह स्पष्ट करते हैं जो निम्न हैं। (क) गाँधी भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के सर्वोच्च नेता थे; (ख) अपने आन्दोलन में उन्होंने धर्म, सत्य तथा अहिंसा के मूल्यों को साधनां के रूप में अपनाया था – ऐसे मूल्य उस समय की परिस्थितियों के लिए उपयुक्त थे; (ग) ऐसे साधनों के सफलतापूर्वक प्रयोग के फलस्वरूप ही गाँधी ने सषक्त अंग्रेजी शासन से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए टक्कर ली थी; (घ) राष्ट्रीय स्तर पर भारत की जनसाधारण जनता को जागृत करने के लिए उपयुक्त अमूल्यषास्त्र थे; (ङ) मानवजाति के संपूर्ण इतिहास में, गाँधी एक ऐसे नेता थे जिन्होंने एक

सार्वजनिक हित की प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा जैसे धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों का प्रयोग किया।

फिर भी, ऐसे मूल्यों (जिनमें धर्म, ईष्वर/सत्य और अहिंसा आदि सम्मिलित हैं) से सम्बन्धित अनेक प्रकार की समस्याओं और मुद्दों के संदर्भ में ऐसे तथ्यों के अर्थ, स्वरूप और उनके प्रभावों को समझना आवष्यक बन जाता है जो वस्तुतः परिवर्तनीय आत्मपरक रूप के होते हैं। इन तथ्यों की व्याख्या करना इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि ऐसे तथ्यों की कुछ अन्य व्याख्या भी दी जा सकती है। स्वयं गाँधी इन तथ्य रूपी शब्दों को सम्पूर्ण मानव जाति के लिए अन्ततः रूप के मूल्य मानते थे। विज्ञान की भाषा में इन तथ्यों के स्वरूप, अर्थ और स्रोत के लिए कोई अनुभवजन्य प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। गाँधी द्वारा प्रयोग यह शब्द – धैर्य, ईष्वर तथा अहिंसा – अपने आप किसी भी व्यक्ति की समझ से बहुत दूर अर्थात् पहुँच से दूर हैं। वह स्वयं ही इन शब्दों को अपने अनुरूप समझ के दायरे में रखते हैं। अतः हमें इन शब्दों का अर्थ उसी रूप में लेना चाहिए जिस रूप में गाँधी हमें बताते हैं। गाँधी के अतिरिक्त, अनेकों सन्त महात्माओं और धर्मात्मा लोग भी इन शब्दों का प्रयोग और उनकी व्याख्या, अपने–अपने तरीकों से किया करते थे। जिनके अर्थ और व्याख्याएँ गाँधी के साथ मिलती–जुलती भी थी और जो धार्मिक पुस्तकों द्वारा भी अनुभवों और तपस्या के फलस्वरूप बताई समझाई जाती थी। ऐसी सभी व्याख्याएँ विज्ञान और विवेक की कसौटी द्वारा आँकी नहीं जातीं। यह बात और है कि कुछ विद्वान कल्पनाओं और आत्म निरीक्षणों के बलबूते से कुछ भी सोच सकने की क्षमता रखते हैं। स्वयं गाँधी ने भी धर्म, ईष्वर, सत्य, अहिंसा आदि शब्दों/मूल्यों को अनेकों बार बताया और समझाया है।

4.5.1 धर्म

धर्म से लेकर अहिंसा तक के सभी मूल्य जो गाँधी के साथ जुड़े बताए जाते हैं, वह आत्मपरक अनुभव, परम्परा, विष्वास और अंतर्ज्ञान से प्राप्त होते हैं जिन्हें अनुभवजन्य रूप से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। गाँधी के अनुसार, यह सभी मूल्य होते हैं, क्योंकि यह सभी सार्वभौम हैं। यह वैचारिक रूप अवधारणाएँ, इच्छाएँ, अथवा कल्पनाओं रूपी वस्तुएँ नहीं होती। यह सब अमूर्त वास्तविकताएँ हैं जो प्लेटो के विचारों से भी अधिक विस्तृत हैं। गाँधी का मानना था कि सभी धर्म समान होते हैं तथा सबमें नैतिकता के नियम निहित होते हैं। किसी भी धर्म के किसी भी नियम को अनुभवजन्य रूप से परिक्षित नहीं किया जा सकता। यह देखा गया है कि प्रत्येक धर्म अपने आपको अन्य धर्मों से सर्वाच्च मानता है और अपने आपको दूसरों के समान समझाने की मनाही करता है। अपने धर्म को विशेष समझते हुए दूसरे धर्मों को संकीर्ण समझता है। इस दृष्टि से गाँधी ने धर्म को नैतिकता तथा उसके नियमों के साथ जोड़कर इस तथ्य पर जोर दिया है कि एक नए धर्म का आविष्कार कर रहा है।

4.5.2 ईष्वर और सत्य

क्योंकि गाँधी के लिए ईष्वर अपने आपमें एक परम मूल्य है, इसलिए यह अनुभवजन्य जाँच के दायरे में नहीं आता। ईष्वर एक सच्चिदानंद है, परिपूर्ण, सर्वषक्तिमान, सभी प्रकार की नैतिकता का स्रोत तथा प्रत्येक व्यक्ति की दैवी ओज में निवास करता है। क्योंकि मनुष्य ईष्वर की दैविकता का एक अंष है, इसलिए जीव अपने आपमें अनिवार्यतया अच्छा होता है। इस प्रकार के ईष्वर की कल्पना संसार के लगभग सभी धर्मों में की गई है। इसके बावजूद भी गाँधी ईष्वर के विभिन्न तत्वों की प्रषंसा चयनात्मकता बरतते हैं। गाँधी ईष्वर को सृष्टिकर्ता, नियामककर्त्ता, परोपकारक, सुखदाता, सत्य, सदाचारी आदि के रूप में देखता है, न कि अन्य रूपों – जैसे मृत्यु, विनाष, विलोपन, अनपेक्ष शक्ति आदि। गाँधी का ईष्वर एक सनातनी हिन्दू ईष्वर है जिसमें कर्म रूपी कानून के सभी नियम निहित हैं और जो आत्म मोक्ष, पुनर्जन्म एवं वैयक्तिक ईष्वर स्वर्ग और नरक आदि के प्रयोजन से जुड़ा है।

गाँधी दावा किया करते थे कि वह स्वयं ऐसे ईष्वर के साथ अपने अंतर्ज्ञान, सचेतन तथा प्रार्थना आदि से संपर्क में हैं। वह आस्था, स्नेह, अथवा मन को विवेक एवं बुद्धि के ऊपर रखते थे। उनका लक्ष्य मनुष्य की निस्स्वार्थ सेवा के माध्यम से ईष्वर/सत्य की प्राप्ति था। ईष्वर अर्थात् सत्य गाँधी के लिए सर्वोच्च अर्थात् परम मूल्य था। इस प्रकार गाँधी से कोई भी धर्म तथा राजनीति के मामलों में प्रष्न नहीं करता था।

बाद में, अन्य धर्मों के निकट आने के लिए ईष्वर की बजाय सत्य को प्राथमिकता देनी शुरु कर दी जिसे उन्होंने सच्चाई अथवा विश्वमण्डल की सर्जनात्मक शक्ति के साथ जोड़ने का प्रयास किया। गाँधी के अनुसार, सत्य का दूसरा पहलू अहिंसा हैं, सृजनता में सत्य और अहिंसा दोनों होते हैं। नकारात्मक रूप से, अहिंसा का अर्थ अन्य लोगों को वाणी और कथनी से हानि न पहुँचाना होता है जबकि सकारात्मक रूप से, अहिंसा का मतलब, स्नेह, करुणा, परोपकार होता है। क्योंकि मनुष्य कभी परिपूर्णता, सम्पूर्ण सत्य अर्थात् ईष्वर प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिए उसे आपेक्षिक सत्य प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए – अपने स्वयं के अनुभव के साथ परीक्षण की प्रक्रिया का एक निवारक। इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी व्यक्ति की नैतिक स्वायत्तता तथा सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार करते है। गाँधी आपेक्षिक सत्य को उन साधनों के साथ जोड़ते है जो व्यक्ति को सत्य रूपी लक्ष्य की ओर ले जाता हैं। उनका विष्वास था कि यदि साधन पर अड़े रहते हैं तो वह हमें अपने आप साध्य की ओर ले जाते हैं – अहिंसा साधन है और सत्य साध्य। गाँधी ने इन सब (अहिंसा, सत्य आदि) को मनुष्य की आत्मषक्ति से जोड़ा हैं जो सृजनात्मक शक्ति का अंष – अर्थात् सत्य/ ईष्वर – हैं। अतः गाँधी अलौकिक संसार से प्राकृतिक संसार की ओर की बात करते हैं। उनके साधनों को साध्य से अलग रखकर अनुभवजन्य रूप से प्रभावित किया जा सकता है।

4.5.3 साध्य और साधन

क्रमानुसार, जब साध्य और साधनों को सत्य अर्थात् ईष्वर रूपी सभी मूल्य के अंष समझे जाते हैं तब उनका पृथक्करण करना कठिन हो जाता है और उनका अर्थ अस्पष्ट एवं विभ्रमीय। क्योंकि गाँधी का सत्य अर्थात् ईष्वर का साध्य सर्वव्यापक है, इसलिए शेष सभी उस साध्य के अंष बन जाते हैं। गाँधी के विचारों में साध्य और साधन समरूप हैं। साधनों के लिए कार्य करना साध्यों की प्राप्ति होती है। ईष्वर अर्थात् सत्य एक साध्य अर्थात् एक सर्वोच्च मूल्य है। परंतु ऐसे साध्य की प्राप्ति न के बराबर है। इसलिए गाँधी आपेक्षिक सत्य की प्राप्ति की बात किया करते थे। आपेक्षिक सत्य को परीक्षण, परख–परीक्षण तथा वैयक्तिक अनुभव पर आधारित क्रमिक विकास के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। एक आपेक्षिक सत्य के रूप में अहिंसा वह साधन है जिनके माध्यम से सत्य – अनपेक्ष अथवा आपेक्षिक – प्राप्त किया जा सकता है। जब साध्य और साधन को सत्य और अहिंसा के रूप में देखा जाता है तो दोनों आपेक्षिक प्रतीत होते हैं – वह आंषिक सत्य और आंषिक अहिंसा बन जाते हैं जिन्हें व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। दूसरे शब्दों में, एक साध्य अथवा उद्देष्य अनेकों साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार एक साधन भी अनेकों उद्देष्यों की ओर बढ़ सकता है। साधन अपने आप किसी साध्य की ओर नहीं बढ़ता – कृति के अनुरूप परिणाम तथा साधन के अनुरूप साध्य होता है। क्योंकि गाँधी इस युक्ति से सहमत नहीं हैं कि साध्य और साधन – सत्य के अंष हैं, इसलिए उन्हें साधनों को साध्यों में बदलने में कोई कठिनाई नहीं होती।

4.5.4 अहिंसा

वैज्ञानिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो "हिंसा" का प्रयोग और उसका चयन दोनों मूल्य–युक्त होते हैं। अहिंसा किसी भी व्यक्ति को शरीर और मस्तिष्क रखने वाले प्राणी को हानि पहुँचाना नहीं हैं। हिंसा मात्र चोट पहुँचाना नहीं होती; यह अनिष्ट इरादे से हानि पहुँचाना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि

गाँधी के लिए "हिंसा" कोई तटस्थ संकल्पना नहीं है। उन्होंने इसे अहिंसा–धार्मिक रूप देने का प्रयास किया हैः हर प्रकार की चोट अनिष्ट इरादे से दी/पहुँचाई जाती है और इस कारण उसका स्वरूप "हिंसक" होता है। दूसरी ओर, "अहिंसा" किसी को कोई चोट न पहुँचाना है – शत्रु अथवा अपने विरोधी को इरादन चोट न पहुँचाना है। ऐसी सभी कृतियाँ "हिंसा" की श्रेणी में आएँगी। यदि उनकी नियत हानि पहुँचाने की है और इस कारण से वह नैतिकता की दृष्टि से गलत होने के साथ निन्दात्मक भी होती हैं। अतः गाँधी उन सभी कृतियों को "हिंसा" के रूप में समझते हैं जो बल, दमन, उत्पीड़न एवं बाध्यता का बोध कराती है।

गाँधी वीर पुरुष की अहिंसा के प्रचलन और प्रचार का सर्वोच्च धर्म अथवा स्वधर्म समझते थे। ऐसी अहिंसा ईष्वर अथवा सत्य पर आधारित होती है जिसमें आत्मषक्ति होती है और जो अजेय और कभी विफल न होने वाली होती हैं। ऐसी अहिंसा जनमत का संकेत करती हैं और अपने विपक्षियों को कमज़ोर करती हैं। शारीरिक बल पर अहिंसा का सार अपेक्षाकृत श्रेष्ठतर होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अहिंसा अजेय नहीं हो सकती तथा यह गलती नहीं कर सकती। इसके प्रवासीकरण के कारण इसके मानने/प्रयोग करने वालों पर निर्भर नहीं करते। अहिंसा की शक्ति स्वयं लोगों पर आधारित होती है, नेतृत्व तो मात्र इसकी शुरुआत करता है, इसे रूप प्रदान करता है तथा इसे संघटित करता है।

4.6 गाँधीवादी संरचना का क्रमबद्ध विश्लेषण

क्रमबद्धता की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि सामाजिक सामान्यीकरण के निर्माण का गाँधी का दृष्टिकोण निगमनात्मक तथा अनुभवजन्य दोनों है। वह अपनी तात्विक मान्यताओं से अपने कुछ नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक निष्कर्ष निकालते है। क्योंकि वह ईष्वर की सर्वव्यापकता में विष्वास रखते है, इस कारण वह मानव समानता के सिद्धान्त को भी स्वीकार करते है। वह मानते है कि भिन्नताओं और विषमताओं के बावजूद, व्यक्ति अपने सारत्व में एक जैसे होते हैं। वस्तुतः वह तात्विक तथा नैतिक आदर्षवाद में आस्था रखने वाला व्यक्ति है। इस कारण वह राजनीति की नैतिक प्रविधि की पवित्रता को स्वीकार करता है। क्योंकि सत्य के प्रति गाँधी की आस्था अटूट है, इस कारण उसके सत्याग्रह का सिद्धान्त असत्य, अन्याय तथा अत्याचार के प्रतिरोध का सख्ती से विरोध करता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका विधि तंत्र निगमनात्मक है।

परन्तु गाँधी का विधितंत्र अनुभवजन्य भी है क्योंकि उसकी सभी प्रतिज्ञप्तियाँ अनुभवों पर आधारित थीं। अस्पृश्यता के उन्मूलन पर गाँधी का बल, साम्प्रदायिक सुसंगति के लिए उसका तर्क तथा ग्रामीण पुनर्वास तथा पुनर्निर्माण पर जोर उसके सामाजिक और राजनीतिक नेता के रूप में प्राप्त उसके व्यक्तित व्यावहारिक अनुभवों का परिणाम थे। सामाजिक और राजनीतिक कृतियों से प्राप्त/समृद्ध अनुभव गाँधी का सषक्त सारत्व था। यहाँ इस तथ्य का वर्णन भी ज़रूरी है कि गाँधी की सोच प्रणाली में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का प्रयोग भी मिलता है। ऐसा नहीं है कि उसने अपने विचारों और संकल्पनाओं के निर्माण में ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग किया था, परंतु यह देखा गया है कि अपने अनेक तर्कों की पुष्टि करने हेतु उन्होंने इतिहास के उदाहरणों की सहायता अवष्य ली थी। गाँधी एक सकुषल वकील थे, परंतु उन्होंने अपने सामाजिक विज्ञान में कानूनी दृष्टिकोण का प्रयोग नहीं किया था। इसके अतिरिक्त गाँधी की सामाजिक विज्ञान की रचनाओं में हमें अपेक्षाकृत तार्किक, मात्रिक तथा व्यवहारवादी पद्धतियों के प्रयोग का कोई स्थान नहीं मिलता।

4.7 सारांश

गाँधी ने सामाजिक समस्याओं को समझने/समझाने के लिए धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण को अपनाया था। इस कारण उन्होंने सामाजिक तत्वों के अध्ययन के लिए आधुनिक प्रक्रियाओं, प्रकरणों और गतिविधियों का प्रयोग नहीं किया था। वस्तुतः उनकी सोच में कोई अलग–थलग तथ्य "सामाजिक" रूप का नहीं होता। "सामाजिक" तथ्य तो जीवन का एक चरण और एक पहलू होता है जिसमें अनेकों पहलू एक–दूसरे के साथ जुड़े–गुंथे होते हैं जिन्हें हम एकीकृत जीवन में "सामाजिक" नाम दे देते हैं। गाँधी की सोच यह थी कि नैतिक सोच और कृतियों का संष्लेषण किया जाना चाहिए। वह इस तथ्य को मानते थे कि समाज की समस्याओं को स्वयं जीवन के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। हमारी सभी कृतियों – सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक आदि का स्रोत हमारी शुद्ध संकल्पषक्ति में होनी चाहिए।

4.8 बोध प्रष्न

1) सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए गाँधीवादी पद्धति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

2) एक सामाजिक–वैज्ञानिक के रूप में गाँधी द्वारा वर्णित मुख्य मुद्दे क्या बताए गए हैं?

3) सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए गाँधीवादी दृष्टिकोण में एक शोधकर्ता को किन समस्याओं और मुद्दों का सामना करना पड़ता है? समझाइए।

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बंदोपाध्याय, जयंतानुजा, *सोषल एंड पॉलिटिक्ल थॉट्स ऑफ गाँधी,* एलाइड पब्लिषर्स, बम्बई, 1969

भट्टाचार्य, बुद्धादेव., *इवोल्यूषन ऑफ दी पालिटिक्स फिलासिफी ऑफ महात्मा गाँधी,* कलकत्ता बुक हाउस, कलकत्ता, 1969

धवन, गोपी नाथ, *दि पॉलिटिक्ल फिलोसफी ऑफ महात्मा गाँधी,* नव जीवन पब्लिषिंग हाउस, अहमदाबाद, 1962

अय्यर, राघवन, एन., *दि मोरल एंड पॉलिटिक्ल थॉटस ऑफ महात्मा गाँधी,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1973

कृपलानी, जे.बी., *गाँधी : हिज लाइफ एंड थॉट्स,* नई दिल्लीः प्रकाषन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1971

पारीख, भिखू, *गाँधी'ज़ पॉलिटिक्ल फिलासिफी,* अजन्ता, दिल्ली, 1995

राधाकृष्णन, एस. (संपा.), महात्मा गाँधीः एस्सेज एंड रिफलेक्षन्स ऑन हिज लाइफ एंड थाट्स, किताबिस्तान, इलाहाबाद, 1944

रेपोपार्ट, अन्टोल, फाइट्स, गेम्स एंड डिबेट्स, यूनिवर्सिटी ऑफ मिषीगन, अना अरबोर, 1960

वर्मा, वी.पी., *दि पॉलिटिक्ल फिलोसिफी ऑफ महात्मा गांधी एंड सर्वोदय,* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, नई दिल्ली, 1959।